हमारे देहातों का कायाकल्प कैसे हो ?

श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक:-

ब्रह्मवर्चस्

शान्ति कुञ्ज, हरिद्वार

卐

मुद्रक:—

युगान्तर चेतना प्रेस

शान्ति कुञ्ज, हरिद्वार

卐

क्रमांक—२८

卐

जनवरी १९८६

卐

मूल्य—एक रुपया

हमारे देहातों का कायाकल्प कैसे हो ?

स्वास्थ्य, मनुष्य की शक्ति है। यदि वह बिगड़ा हुआ है तो स्वयं कष्ट उठायेगा और दूसरों पर भार बनकर रहेगा। कुछ उपार्जन न कर सकने या दूसरों के सामने अपना व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक ढंग से न कर पाने की स्थिति में वह स्वयं में सकुचाता रहेगा और दूसरों की आँखों में भी अपनी समर्थता का परिचय न दे पाने के कारण हेय बन कर ही रहेगा। ऐसे जीवन को भारभूत ही कहना पड़ता है।

शास्त्रकारों ने धर्म, अर्थ काम, मोक्ष का आधार स्वास्थ्य को ही बताया है। उसका महत्व हमें सर्वोच्च स्तर की आवश्यकताओं में करना चाहिए। इसे दुर्भाग्यपूर्ण ही कहना चाहिए कि इस दिशा में समुचित ध्यान नहीं दिया जाता। जब गाड़ी चलती है तब तक घसीटते रहते हैं और जब वह टूट कर बिस्तर पकड़ लेती है, तब होश आता है। इतने दिनों में शरीर की जो टूट-फूट हो चुकी है, उसकी क्षतिपूर्ति में ढेरों पैसा लगता है। परिवार वालों को चिन्तित रहना पड़ता है, पैसा खर्चना पड़ता है और काम छोड़ना पड़ता है, सो अलग। एक के बीमार पड़ जाने पर सभी के मन पर उदासी छायी रहती है।

अच्छा हो कि ऐसी स्थिति उत्पन्न होने से पहले ही सतर्कता बरती जाय, स्वस्थता के नियमों का पालन किया जाय और जब कभी कुछ ऊँच-नीच दिखाई पड़े, तभी समय रहते सतर्कता बरती जाय और सुधार के नियमों का पालन करते हुए अपना इलाज आप कर लिया जाय।

प्रकृति ने हर प्राणी को इतना ज्ञान दिया है कि वह सीधे रास्ते चले तो बीमार न पड़े। यदि कोई ऐसा कुयोग आ ही जाय तो प्रकृति-परम्परा ऐसी है, जिसे अपना कर उस दुर्बलता या रुग्णता के आक्रमण

को समय रहते रोका जा सकता है। भगवान ने मनुष्य को ऐसा सहनशील शरीर दिया है कि यदि उसे जानबूझ कर तोड़ा-फोड़ा न जाय और बीमार पड़ने के लिए विवश न किया जाय तो वह बिना दुर्बलता और रुग्णता का शिकार हुए पूर्ण आयु तक जीवित रह सकता है।

प्राणियों की परम्परा यह है कि जितने वर्ष में वह युवा होता है उससे चौगुने समय तक जीवित रहता है। सभी प्राणियों पर यह नियम समान रूप से लागू होता है। मनुष्य २५ वर्ष की आयु में परिपक्व स्थिति तक पहुँच पाता है। ऐसी दशा में उसे सौ वर्ष तक जीवित रहना चाहिए। दीपक में पूरा तेल होते हुए भी यदि उसके पेंदे में छेद हो जाय या तेज हवा का झोंका लगे, तो वह समय से पूर्व भी बुझ सकता है। यह नियम मनुष्य जीवन पर भी लागू होता है। प्रकृति की मर्यादाओं को तोड़ने-फोड़ने से ही अपने किये का दण्ड भुगतना पड़ता है और कमजोरी, बीमारी तथा अकाल मृत्यु उसे समय से पहले ही आ दबोचती हैं।

इन दिनों मनुष्य ने सभी क्षेत्रों में उल्टा चलना और प्रकृति मर्यादाओं का उल्लंघन करना आरंभ कर दिया है। उसी का परिणाम है कि उसे रोते-कलपते अपनी करनी का फल भुगतना पड़ता है और रोता-कलपता ज्यों-त्यों करके जिन्दगी के दिन पूरे करता है।

होना यह चाहिए कि स्वास्थ्य के नियमों को हम भली भाँति समझने का प्रयत्न करें इतना ही नहीं, उनका कड़ाई से पालन भी करना चाहिए। यह मार्यादा साधारण मशीनों के संबंध में भी पालन करनी पड़ती है। यदि उन्हें गलत ढंग से प्रयोग किया जाय या रख-रखाव का प्रयत्न न किया जाय, तो स्वभावत: वह जल्दी खराब होगी, जल्दी टूट-फूट कर बेकार बनेगी। यही बात शरीर के संबंध में भी है। उसका उपयोग हमें भली प्रकार जानना चाहिए और तनिक-सी भी खराबी दीख पड़ने पर तुरन्त सतर्क हो जाना चाहिए। यदि इतना किया जा सके तो किसी को भी लम्बी और अधिक कष्टदायक बीमारी की व्यथा न सहनी

पड़े। बीमारी आसमान से नहीं टूटती। वे प्रकृति की अवज्ञा करने के दंड-स्वरूप ही आती हैं। उन्हें हम जानबूझ कर ही बुलाते हैं। सतर्कता बरतने वाले सदा स्वस्थ रहे हैं और पूरा जीवन हँसी-खुशी के साथ जिये हैं।

प्रकृति के नियम थोड़े से ही हैं, जिनका पालन करने से हम सदा नीरोग और सुखी रह सकते हैं।

इस संदर्भ में एक व्यापक और सामूहिक आन्दोलन की आवश्यकता है। ऐसी दुकानें खुलनी चाहिए, जिनमें मिलावट का अनाचार न होता हो। शुद्ध वस्तुएँ यदि मँहगी मिलें तो भी हर्ज नहीं। अपने देश में प्रतिस्पर्धा में सस्ता बेचने और उनमें मिलावट करने की प्रथा चल पड़ी है। इससे निपटना अलग-अलग आदमियों के लिए कठिन है। अशुद्ध वस्तुओं की रोकथाम और शुद्ध वस्तुओं की उपलब्धि का व्यवसाय किसी संस्था संगठन के अन्तर्गत ही हो सकता है। दूध, घी जैसी वस्तुओं में मिलावट न होने पाये, यह कार्य भी संगठित प्रयासों से ही संभव हो सकता है। व्यवसाय क्षेत्र में जो अनैतिकता चल पड़ी है, उसके कारण लोगों का स्वास्थ्य भी नष्ट होता है और पैसा भी व्यर्थ जाता है। इस सामयिक समस्या को सुलझाने के लिए ऐसे संगठित प्रयत्न चलने चाहिए कि शाक-भाजी का सस्ते फलों का उत्पादन बढ़े, पशुपालन का संघबद्ध प्रयत्न हो। इन कार्यों को व्यावसायिक दृष्टि से न नफा, न हानि सिद्धान्त को अपनाते हुए चला जाय। शहद, ताड़ी, गुड़, खजूर जैसे पोषक पदार्थों की मिठाई बनने लगे, तो लोगों में सफेद चीनी खाने के स्थान पर गुड़ खाने की आदत पड़े। भैंस के दूध की अपेक्षा गाय के दूध-घी का प्रचलन बढ़े, इसलिए जन साधारण को आवश्यक जानकारी देने उत्पादन तथा विक्रय बढ़ाने का प्रबन्ध होना चाहिए।

अपने देश की जड़ी-बूटियाँ इतनी गुणकारी हैं कि छुट-पुट बीमारियाँ उन्हीं के सेवन से दूर हो सकती हैं, पर यहाँ भी कठिनाई यही है कि पंसारियों की दुकानों पर गली-सड़ी नकली वस्तुएँ मिलती हैं और वे लाभ के स्थान पर हानि पहुँचाती हैं। यदि इन सब की शुद्धता और प्रामाणिकता

की उपलब्धि सहकारी स्टोरों पर होने लगे और उनकी सेवन-विधि की जानकारी का सामान्य परिचय कराने की व्यवस्था हो तो आधी बीमारियाँ बिना चिकित्सकों की सहायता के सामान्य जानकारी के आधार पर लोग अपने आप अच्छी कर सकते हैं।

स्वास्थ्य आन्दोलन के अन्तर्गत पुराने समय में व्यायाम, खेलकूद, लाठी चलाना, शस्त्र विद्या का अभ्यास जैसे प्रयोगों को प्राथमिकता मिलती थी और गाँव-गाँव अखाड़े चलते थे, जिसमें मल्ल विद्या सरीखे अभ्यास कराए और पहलवान बनाये जाते थे। अब उस प्रचलन में समयानुसार थोड़ा अन्तर करने की आवश्यता पड़ेगी। मध्यकाल में सामन्तवाद का बोलबाला था। छोटे-छोटे जागीरदार मजबूत लोगों की सेना बनाकर पड़ोसियों का क्षेत्र तथा वैभव हड़पने के लिए आये दिन चढ़ाई और लूटपाट किया करते थे। उसे अपने गाँव-क्षेत्र की रक्षा करने के लिए शस्त्र-संचालन की कला जानना और पहलवान स्तर का मजबूत बनना आवश्यक था; पर आज वह स्थिति नहीं रही। सुरक्षा की सरकारी व्यवस्था मजबूत होने लगी है। बन्दूक जैसे शस्त्रों का प्रचलन होने लगा है, फिर भी इस बात की बहुत आवश्यकता है कि स्थानीय चोर-गुंडों से आत्म रक्षा करने के लिए साहसी युवकों का संगठित दल गठित किया जाय। उन्हें अन्य अस्त्र चलाना न सही, लाठी चलाना तो आत्मरक्षा के लिए आना ही चाहिए। छः इन्च से कम फल वाले भालों पर भी लाइसेन्स नहीं है। इनका अभ्यास आक्रमण के लिए न सही, आत्मरक्षा के लिए तो काम आ ही सकता है।

अब कठोर और भारी व्यायामों की अपेक्षा हल्के-फुल्के खेलकूदों का प्रचलन गाँव-गाँव होना चाहिए। इसमें बढ़िया किस्म का मनोरंजन भी है और शरीर को मजबूत बनाने के लिए एक उपयोगी आन्दोलन भी। शहरों में यह प्रयास स्कूली कामों या खुली जगह में होता रहता है। हमें इस दिशा में सामूहिक अभ्यासों का, टीमों का प्रचलन आरंभ कर देना चाहिए। समय-समय पर उनकी प्रतिस्पर्धाएँ होती रहें और पुरस्कार वितरण किय

जाते रहें। खेलकूदों के लिए जिन उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है, उनका सामूहिक प्रबन्ध किया जाय। क्षेत्रीय प्रतियोगिताएँ होती रहें।

समय को देखते हुए 'स्काउटिंग' स्तर का प्रशिक्षण और अभ्यास गाँव-गाँव चलना चाहिए। सिखाने के लिए स्थानीय लोग मिल सकें तो सर्वोत्तम, अन्यथा ऐसा प्रबन्ध भी हो सकता है कि एक सेवाभावी प्रशिक्षक सप्ताह में एक दिन में एक गाँव में जाकर स्काउटिंग का आवश्यक प्रशिक्षण देता रहे। बाकी दिनों बालक, किशोर, युवक, प्रौढ़ अपने-अपने स्तर के अभ्यास करते रहें।

पिछले दिनों फर्स्टएड, होमनर्सिंग जैसे प्रशिक्षण रेडक्रॉस सोसायटी की ओर से चलाये जाते थे, वे अभी भी चल रहे हैं। स्काउटिंग में भी उन विषयों का समावेश हो गया है। धात्री कला का शिक्षण भी इन्हीं संस्थाओं के अन्तर्गत चल रहा है, जिसकी जानकारी महिलाओं के लिए नितान्त आवश्यक है। इन प्रशिक्षणों का ज्ञान महिला समाज को और खेलकूदों का, लाठी चलाने जैसा अभ्यास पुरुषों में चलाया जाना चाहिए; किन्तु इन कार्यों में उत्साहवर्धक सफलताएँ तभी मिल सकती हैं, जब कि इन्हें स्वास्थ्य संरक्षण आन्दोलन के अन्तर्गत सामूहिक रूप से चलाया जाय।

अन्तर्क्षेत्रीय, अन्तप्रान्तीय, अन्तर्राष्ट्रीय खेलकूदों की प्रतियोगिता में सरकार समुचित प्रयत्न और पैसा खर्च कर रही है; पर उनका लाभ बड़े लोगों के शरीरी लड़कों को ही मिल पाता है। वह हवा अभी गाँवों तक नहीं पहुँची है। हमारा कर्तव्य है कि व्यायामों को, खेलकूदों को प्रधानता देते हुए सार्वजनिक स्वास्थ्य संरक्षण में अन्य जिन-जिन बातों की आवश्यकता है, उन सब का समावेश करें और स्वास्थ्य बिगाड़ने वाले अन्यान्य कठिनाइयों का सामना करें। पुराने जमाने में व्यायाम विस्तार एक ही कार्य था और उसमें नवयुवक भर शामिल होते थे। अखाड़े के 'उस्ताद' अपने-अपने यहाँ अपनी-अपनी सूझबूझ के अनुसार उन प्रयासों को चला लिया करते थे; पर अब उस संदर्भ में अनेकों समस्याएँ सम्मिलत हो गई

हैं और उन सबका साथ-साथ मुकाबला करने के लिए संगठित प्रयासों की एक प्राणवान आन्दोलन के रूप में गतिशीलता आवश्यक हो गई है।

कभी पहलवानी का शौक करने वाले एक छोटे से वर्ग के लिए अखाड़े जाना आवश्यक था। वे ही थोड़े युवक मिलकर एक 'उस्ताद' की अध्यक्षता में उस प्रयोजन को चलाते थे। अब व्यायाम हर किसी के लिए आवश्यक हो गया है; बच्चों के लिए बूढ़ों के लिए, लड़कियों के लिए, युवतियों के लिए, आदमियों एवम् वृद्धाओं के लिए भी। अब कठोर परिश्रम का प्रचलन नहीं रहा। कुछ श्रमिकों को छोड़कर प्रायः आधे लोग हल्के-फुल्के श्रम करते हैं। मशीनों की सुविधा ने हर किसी का काम हल्का कर दिया है। इसके लिए मांसपेशियों, नस-नाड़ियों को मजबूत बनाने के लिए ही नहीं, भोजन को ठीक तरह पचाने के लिए भी कड़े श्रम की आवश्यकता पड़ रही है। इसके लिए अंग संचालन की अनेक क्रियाओं का आविष्कार हुआ है और उन्हें पी. टी., एन. सी. सी. आदि नामों से पुकारा जाने लगा है। स्काउटिंग में भी इन सब का समावेश है। इसके अन्तर्गत हर आयु और हर स्तर के लिए पृथक-पृथक प्रकार के हल्के भारी व्यायाम हैं। इनमें से बीमारों, कमजोरों और गर्भिणियों के लिए ऐसे भी हों, जो आसानी से अपना उद्देश्य पूरा करते हों और शरीर के किसी भाग पर आवश्यक दबाव नहीं डालते। उन्हें सीखने-सिखाने की, करने-कराने की नितान्त आवश्यकता है। इनका प्रशिक्षण जहाँ जिस प्रकार संभव हो, वहाँ उसके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

प्राचीनकाल में प्रदूषण, नशेबाजी, कामुकता आदि की इतनी समस्याएँ नहीं थीं; पर अब तो उनका आक्रमण हर दिशा से, हर क्षेत्र पर बहुलता के साथ हो रहा है। नशेबाजी बड़े-बूढ़ों तक ही नहीं रही, छोटी आयु के स्कूली बच्चे तक लुक-छिप कर बीड़ी सिगरेट पीते हैं। बड़े होने पर वे भांग, चरस, शराब आदि की कुटेवें अपना लेते हैं और बड़े होने पर इनके कुचक्र में इस बुरी तरह फँस जाते हैं कि शरीर खोखला हो जाता है।

कामुकता की दिशा में अश्लील साहित्य ने, कुसंग ने बच्चों के दिमाग मोड़े हैं। यों बाल विवाह के विरुद्ध कानून है, पर वह रुका नहीं है। छोटी आयु के लड़के लड़कियाँ काम कौतुक में लिप्त होते हैं तो उनके शरीर जर्जर हो जाते हैं और जवानी में ही बुढ़ापा आ घेरता है। देर से सोना, देर से उठना अब आम आदत हो गई है। इस कुचक्र में नींद पूरी नहीं हो पाती, दिन में आलस छाया रहता है जिसने सिनेमा या टी. वी. रात को बारह बजे तक देखा है, उनसे प्रातःकाल उठने की आशा कैसे की जा सकती है। जो देर तक सोता रहेगा, उसका चेहरा निस्तेज रहेगा और प्रातःकाल के सुन्दर समय में जिन महत्वपूर्ण कार्यों का बन पड़ना संभव है उसकी आशा कैसे की जाय। इस प्रकार की अनेकों बुराइयाँ ऐसी हैं जिनने हर दिशा में आक्रमण किया है और जनसाधारण को दुर्बल रोगग्रस्त बनाया है। बहु प्रजनन तो नारियों के लिए एक प्रकार से प्राण घातक ही है। छोटी आयु में अधिक बच्चे जने के उपरान्त वे अपना रूप यौवन गँवा बैठती हैं और खोखली काया लेकर जिस-तिस प्रकार अपनी जिंदगी के दिन पूरे करती हैं। यदि इस दिशा में सर्व साधारण को सूचित किया जाय तो स्वास्थ्य गंवा बैठने के अतिरिक्त और भी अनेक चिन्ता विपत्तियों से उन्हें बचाया जा सकता है।

कुछ दिन पूर्व समझा जाता था कि खाद्य पदार्थों की मिलावट, कीटनाशक दवायें रासायनिक खाद्य ही स्वास्थ्य को गंवाने के प्रमुख कारण हैं। पर अब दृष्टि दौड़ाने से प्रतीत होता है कि एक नहीं अनेक समस्याओं ने स्वास्थ्य संकट खड़ा किया है। इनका उन्मूलन और स्वास्थ्य रक्षक प्रवृत्तियों का संवर्धन अपने आप में एक इतना बड़ा काम है जिसका मुकाबला करने के लिए शिक्षितों-अशिक्षितों, उत्पादनों और उपभोक्ताओं को समान रूप से सूचित करना पड़ेगा। अनुपयोगी को हटाने के लिए आवश्यक है कि उनके स्थान पर उपयोगी पदार्थों का उत्पादन ही नहीं उपलब्धि का भी प्रबन्ध किया जाय।

बढ़ती हुई गंदगी भी इसी दुष्प्रजनन से बड़ी समस्या बनती है। देहातों के घरों में पाखाने आमतौर से नहीं होते। गाँव के इर्द-गिर्द खेतों रास्तों पर बच्चे और महिलायें मल त्याग करती हैं। पुरुष तो थोड़ी बहुत दूर निकल जाते हैं। पर गाँव के इर्द-गिर्द तो मल की दुर्गन्ध से बुरी तरह भरा रहता है। किसी गाँव में प्रवेश करते ही बाहर से उसमें नाक सड़ाने वाली बदबू आती है। घरों की नालियों में ही बर्तन साफ करने और पेशाब जाने का क्रम चलता है। पर इन नालियों की सफाई का कोई प्रबन्ध नहीं होता। वे घर से निकलकर गलियों तक जाती हैं और वहीं सड़ती रहती हैं। कुओं के इर्द-गिर्द भी कीचड़ जमा रहती है और इन सब के सड़ने से कई तरह की बीमारियाँ पैदा होती है। गन्दगी के कारण देहातों में बीमारियों का दौर कहीं अधिक है यद्यपि वहाँ की जलवायु शुद्ध होने के कारण स्वास्थ्य अपेक्षाकृत अच्छा होना चाहिए।

जापान में मनुष्य के मल को सड़ा कर खेती में खाद की तरह काम में लाया जाता है। उसे सोना खाद कहते हैं। पशुओं के गोबर की कमी भी उससे पूरी होती है और पैदावार भी अधिक मिलती है।

अपने यहाँ गोबर के साथ मनुष्य का मल भी मिलाकर बायो गैस के प्लान्ट हर गाँव में लगाये जा सकते हैं। इससे मुफ्त का ईंधन भी मिलेगा। खाद भी सुरक्षित रहेगी और गन्दगी के कारण उत्पन्न होने वाली बीमारियों का दौर भी न बढ़ेगा।

यदि उतना बड़ा प्रबन्ध न हो सके तो खेतों में नालियाँ खोदकर उसके तीन ओर टाट की आड़ लगाई जा सकती है। चलते फिरते पाखाने भी लकड़ी, टीन या कपड़े के बन सकते हैं। उन्हें एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान में रखा जा सकता है और वह मल मिट्टी से ढकते जाने पर कुछ ही दिनों में अच्छी खाद बनकर पैदावार बढ़ा सकता है। इतना भी न बन पड़े तो सबसे सुगम तरीका यह है कि एक हाथ में पानी का लोटा और दूसरे हाथ में छोटी खुरपी लेकर जाया जाय। जहाँ मल त्यागना हो

वहाँ पहले गड्ढे बना लिया जाय, बाद में उसे पहले की निकली हुई मिट्टी से ढक दिया जाय। इसमें कोई झंझट भी नहीं है और खाद की बर्बादी तथा गन्दगी फैलने की दुहरी क्षति का बचाव भी होता है।

घरों से निकलने वाले पानी के लिए एक छोटी हौजी बना दी जाय या नाद गाड़ दी जाय। उस जमा पानी को नित्य निकालकर खाद के गड्ढे में डाल दिया जाय। घरों का कूड़ा निकलता रहता है, उसके जहाँ-तहाँ घूरे जमते रहते हैं। यह भी बीमारी और गन्दगी फैलाने के निमित्त कारण बनते हैं। इनके लिए भी यदि गड्ढे बना दिये जाँय तो गाँव में जहाँ-तहाँ जमा कूड़ा सड़कर गन्दगी फैलाने का निमित्त कारण न बने।

देहातों में अक्सर कुयें कच्चे होते हैं। उनके बीच में कबूतर अपने घोंसले बना लेते हैं। पानी में अण्डे बच्चे गिरते रहते हैं और वे सड़कर ऐसे छोटे कीटणु पैदा करते हैं जो पिये जाने पर अनेक प्रकार के संकट पैदा करें। इन कुओं की कीचड़ समय-समय पर साफ की जाती रहनी चाहिए। समय समय पर पोटैशियम परमैंगनेट या ब्लीचिङ्ग पाउडर डालने की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि पानी में उपजे विषाणुओं का सफाया होता रहे। कुओं के समीपवर्ती गड्ढों को साफ करना या केला, बाँस लगा देना उपयुक्त रहता है जो इस पानी को सोखता रहे।

छोटे देहातों में न तो म्युनिसिपल बोर्ड होते हैं न टाउन एरिया। पंचायतें भी इतनी खर्चीली प्रबन्ध नहीं कर सकती। ऐसी दशा में यही एक कार्य सरल पड़ता है कि गाँव-गाँव स्वास्थ्य संरक्षक दल बने। वे सेवा भाव से नित्य नियमित श्रमदान किया करें और उसी के सहारे गाँव को साफ सुथरा बनने का काम होता रहे।

हर गाँव पीछे एकाध पोखर, जोहड़ भी होता है। उसमें बरसात का पानी जमा होता रहता है। यह कुछ महीने ही पशुओं को पीने का काम देता है। गर्मी आने से पहले सूख जाते हैं। इससे पालतू तथा अन्य पशुओं को पीने का पानी मिलना दुर्लभ हो जाता है। आस-पास की मिट्टी पानी

से मिलकर इन पोखरों में जाती रहती है और उनकी गहराई कम होते जाने से पानी भी थोड़ा जमा होता है और जल्दी सूखता है ।

इन तालाबों की हर वर्ष सफाई होती रहनी चाहिए ताकि अधिक पानी टिके । उसमें सिंघाड़ा, कमल जैसी फसलें पैदा होती रहें और जब पानी सूखे तब उस कीचड़ से कच्ची ईंटें बनती रहें । तालाबों की यह उपयोगिता किसी भी प्रकार कम नहीं है । पर यदि उनकी सफाई न होती रहे तो मिट्टी भरते रहने से वे प्रायः समतल हो जाते हैं और उनके द्वारा जो लाभ मिल सकते थे उन सभी से पूरे गाँव को वञ्चित रहना पड़ता है । तालाबों के इर्द गिर्द या नमी वाले क्षेत्र में मूँज बोई जाती रहे तो चारपाइयों को रस्सियाँ तथा अन्य कामों के लिए मोटे रस्से बिना किसी लागत के फालतू श्रम से ही बन सकते हैं ।

छोटे देहातों की स्वच्छता और सफाई के लिए उस गाँव के उत्साही जनों का ऐसा स्वय सेवक दल गठित होना चाहिए जो श्रमदान के सहारे ही वहाँ की स्वच्छता में कहने लायक योगदान देता रहे । दो घन्टे रोज समय देने का यदि गाँव के सभी समर्थ व्यक्ति योगदान देने लगें तो उतने भर से ही नयेकुए खोदने तथा कच्ची ईंट बनाकर स्कूल आदि के लिए काम चलाऊ कुटीर बनाये जा सकते हैं । घरों में मेहमानों के ठहरने के लायक प्रायः जगह नहीं होती । ऐसे सार्वजनिक घर बन सकें तो उनमें मेहमानों, उत्सवों, बरातों तक के ठहरने का प्रबन्ध हो सकता है ।

इन दिनों ईंधन की समस्या दिन-दिन विकट होती जा रही है । इमारती पेड़ों की तरह जलावन में काम आने वाले पेड़ भी कट चुके । गोबर को खाद की अपेक्षा जलावन में खर्च करना अब बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं माना जाता है । ऐसी दशा में ईंधन छोटे देहातों के लिए संकट बन गया हैं । कई बार तो वह शहरों से ढोकर ले जाना पड़ता है, इसीलिए और भी मँहगा पड़ता है । इस समस्या का निकट भविष्य में कोई हल भी दिखाई नहीं पड़ता ।

इसके लिए गोबर गैस प्लान्ट के अतिरिक्त दूसरा उपाय यही सूझ पड़ता है कि जहाँ भी जगह खाली पड़ी हो वहाँ जल्दी बढ़ने वाले जलावन के पेड़ लगाये जायँ । चूल्हे इस प्रकार के प्रचलित हुए हैं जिनमें ईंधन भी कम लगता है और धुआँ भी कम निकलता है । धुएँ से स्त्रियों की आँखें किस बुरी तरह खराब होती हैं, इसे सभी जानते हैं । इसका हल सुगम चूल्हे बनाना किसी सीमा तक सहायक हो सकता है और जलावन का उत्पादन भी । कोई चारा न दीखे तो खेती में से थोड़ी भी जमीन काट कर जलावन के काम आने वाली और जल्दी बढ़ने वाली लकड़ी भी उगाई जा सकती है ।

बरसाती नालों को रोक कर छोटे-छोटे बाँध या तालाब बनाये जा सकते हैं जो किसी सीमा तक सिंचाई के काम आ सकते हैं । विचार करने पर इस प्रकार अनेकों कार्य स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल हो सकते हैं जो गाँव की जनता की आवश्यकताओं को सस्ते में पूरी कर सकें ।

पशु पालन के लिए चारागाह अब समाप्त होते जा रहे हैं । बाजरा ज्वार, गेहूँ आदि के सूखे डंठलों से पशुओं की क्षमता घटती है । उनके लिए हरा चारा आवश्यक है । इसके लिए बरसीम जैसी घासों का उत्पादन करने के लिए खेती की जमीन में थोड़ी कटौती की जा सकती । पशुओं का श्रम, गोबर, चमड़ा, दूध, बच्चे सभी मिलकर इतने मूल्यवान सिद्ध होते हैं कि उस आमदनी को कृषि उत्पादन से किसी भी प्रकार कम मूल्यवान नहीं माना जा सकता ।

गाँव छोड़ कर शहरों की ओर आजीविका के लिए भागने वालों की भगदड़ को एक प्रकार से प्रतिभा पलायन ही कह सकते हैं । अनेक डाक्टर, इन्जीनियर, विशेषज्ञ भारत के कर दाता की गाढ़ी कमाई पर पढ़ते लिखते और योग्यता बढ़ाते हैं । इन पर ढेरों खर्च देश का आता है तब तक विदेशों को अच्छी नौकरी की लालच में जाते हैं । वे स्वयं तो कुछ खुशहाल भी बन जाते हैं पर यह याद नहीं रखते कि देश के कर दाताओं ने उन पर विपुल खर्च किया है । उनके हित का भी ध्यान रखें । इसी प्रकार उन

ग्रामवासियों के लिए भी कहा जा सकता है जो अपनी जन्मभूमि को अधिक उर्वर, अधिक खुशहाल और फली-फूली बनाने की अपेक्षा शहरों के लिए घर भागते हैं। वहाँ बेशक मजदूरी कुछ अधिक मिल जाती है पर आवास, निवास, मँहगाई, बच्चों की शिक्षा आदि के लिए कुछ भी नहीं पाते। गन्दी बस्तियों में रहकर अपने परिवार का चरित्र और स्वास्थ्य गँवा बैठते हैं। जहाँ निवास तक की सुविधा नहीं है, जहाँ न कहीं किसी के प्रति स्नेह, सहयोग, और सहानुभूति है वहाँ नौकरी पर कई-कई मील जाने आने में ढेरों समय पैसा गँवाने के बाद अन्ततः उतना ही हाथ लगता है जितना कि वे अपने गाँव में रहकर प्रगतिशील सेवा-भावी जीवन जीते हुए अपने लिए और समूचे गाँव के लिए सुविधाओं के अम्बर लगा सकते थे। शाक-भाजी की बिक्री बढ़ाने के लिए, ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए सप्ताह में दो दिन की हाट लगने लगे तो जरूरतमन्दों को अपनी जरूरत की वस्तुएँ मिल जायँ और खरीददारों को भी जहाँ-तहाँ न दौड़ना पड़े। बैलगाड़ियाँ किराये पर चलने लगें। वजन ढोने लगें और यात्रियों को बिठाने लगें तो शहरों से आने जाने वाली बसों और ट्रकों का मुकाबिला किया जा सकता है। नई तरकीबों से सुधारी गई खेती, जब होने और सिंचाई का प्रबन्ध बाँध या तालाबों से होने लगे, छोटे-मोटे गृह उद्योग अपनाये जाने लगें, तो कम खर्चीला जीवन कम आमदनी में भी गुजारा जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि समझदार लोग यदि गाँव को उन्नतिशील बनाने के लिए संगठित और कठोर प्रयत्न करने की अपेक्षा यदि पलायन करने लगें तो कम हिम्मत वालों और पिछड़े हुए लोगों की रही बची हिम्मत भी टूट जायेगी और वे अपने को नेतृत्व-विहीन असहाय अनुभव करके और भी गई गुजरी स्थिति में गिरने लगेंगे।

जो लोग गाँव छोड़ कर शहरों की ओर मजदूरी के लिए भागते हैं उनमें से अधिकांश को अतिशय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जो बच्चों समेत गए हैं, वे अपने परिवार का स्वास्थ्य, चरित्र और स्नेह

सद्भाव गँवा कर पहले की अपेक्षा भी बुरी स्थिति में लौटे हैं। शहरों में खिचपिच मचाने और वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य बिगाड़ने जैसी कठिनाइयाँ उत्पन्न करके अवांछनीय मेहमान की तरह तिरस्कार के भाजन बन कर लौटे हैं। इसकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा था कि गाँव का सस्ता जीवन जीते हुए उस क्षेत्र को समुन्नत बनाने वाली योजनाओं में लगे रहते और ऐसी स्थिति उत्पन्न करते जिससे उनकी प्रशंसा भी होती और संतोष भी मिलता।

भारत ग्राम प्रधान देश है। यहाँ की ७० प्रतिशत जनता छोटे देहातों में बसती है। यदि आजीविका उपार्जन के नये स्रोत उसी क्षेत्र में उत्पन्न करने की अपेक्षा अधिकांश लोग शहरों की ओर भगने लगे तो गाँव उजड़ ही जायेंगे और शहरों में खिचपिच वहाँ के निवासियों के लिए जानलेवा संकट उत्पन्न करेगा। ऐसा असंतुलन उत्पन्न करने की अपेक्षा गाँव के निवासी प्रत्येक भावनाशील और कर्मनिष्ठ व्यक्ति को अपनी चिन्तन प्रक्रिया और श्रमशीलता को इस दिशा में नियोजित करना चाहिए कि वहाँ का वातावरण बदले और इतना सुन्दर बने कि शहरों के निवासी उस नरक को छोड़कर देहातों के सौम्य जीवन में शान्तिपूर्वक निवास करने के लिए लालायित हों।

पाश्चात्य देशों के बड़े-बड़े शहरों में निवासी अपने स्वास्थ्य और प्राकृतिक सौंदर्य को महत्व देते हुए सौ-सौ-दो-दो सौ मील नित्य आने जाने का खर्च उठाते और समय खर्च करते हैं। इसी में बुद्धिमानी है और दूरदर्शिता भी। शहरों की चमक दमक और दर्शनीय आकर्षण को देखकर दीपक पर जल मरने वाले पतङ्गों का उदाहरण नहीं बनना चाहिए वरन् गाँवों में रहते हुए उस क्षेत्र की प्रगति करने के लिए संयुक्त एवम् संगठित प्रयास करने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा किया जा सके तो पिछड़ी हुई परिस्थितियों में काया कल्प जैसा परिवर्तन हो सकता है और थोड़े से पुरुषार्थ परायण प्रगतिशील प्रयत्न से उसी क्षेत्र का आशा जनक एवम्

उन्माद्वर्धक उत्कर्ष हो सकता है। यही सीधा और सच्चा मार्ग है। पिछड़े क्षेत्र को उन्नतिशील बनकर दिखा देने में मनुष्य की गरिमा भी है और कुशलता भी। मातृ भूमि के प्रति प्यार का आदर्श हम इसी आधार पर प्रस्तुत कर सकते हैं।

जहाँ मनुष्य निवास करते हैं वहाँ कुछ न कुछ उत्पादन होता ही है। उसके विक्रय के लिए प्रबंध करना ही होता है। उद्योग सम्बन्धी वस्तुएँ तथा उनकी टूट-फूट, दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएँ, वाहन आदि की आवश्यकता सभी जगह पड़ती है। उनमें से जो वस्तुएँ जहाँ कम पड़ती दिखाई पड़ें उनका एक जनरल स्टोर थोड़ी पूँजी लगाकर खोला जा सकता है। जिसके लिए ग्रामीणों को दूर-दूर न भागना पड़े और कुछ व्यवसाइयों को एक ही स्थान पर सभी वस्तुओं को जुटा देने से विक्रेता को भी लाभ मिले। इसके अतिरिक्त यह दृष्टि दौड़ाई जा सकती है कि उस क्षेत्र में क्या नया उत्पादन हो सकता है अथवा पुराने प्रचलनों को पुनर्जीवित किया जा सकता है। अगले दिनों कितने ही नये काम उद्योग चलने ही जा रहे हैं। बिना धुएँ का सुलभ चूल्हा, हैन्ड पम्प, सुलभ शौचालय, मकानों के लिए खपरैल का उत्पादन सस्ते खिड़की, जँगले किवाड़ आदि।

पुराने ढंग के मकान इस प्रकार बनते थे जो एक-दूसरे से सटे रहते थे। हवा के आवागमन के लिए गुंजाइश नहीं छोड़ी जाती थी। कारण कि उन दिनों दीवार काटकर सेंध लगाने वाले चोरों का अधिक दौर रहता था। उनके द्वारा चोरी किये जाने का भय बना रहता था। यह सब नितान्त गरीबी और काहिली की स्थिति में होता है। मनुष्य की थोड़ी बुद्धिमानी, समझदारी बढ़ेगी? वे वह ऐसे जोखिम भरे धन्धे में यत्किंचित लाभ उठाने में रात भर जाने-आने, कुत्तों द्वारा काटे जाने, पकड़े जाने पर दण्ड भुगतने जैसे जोखिम न उठावेगा। अच्छी जाति के कुत्ते पाले जाने लगें और उन्हें रात को पहरा देने में ट्रेण्ड किया जाने लगे तो इस चोरी वाली परिपाटी का अन्त हो सकता है। इसका उपाय यह

है कि मात्र दैनिक उपयोग की सस्ती वस्तुएँ ही घर में रखी जाएँ। नकदी या जेवर आदि को बैंकों में जमा किया जाय घर में उतना ही सामान रखा जाय जिसे चुराना व बेचना चोरों को झंझट का काम लगे।

चोरी से भी खतरनाक बात है घरों में सूर्य की धूप और हवा का आवागमन रोक देना। सब ओर से बन्द मकानों में यदि एक मात्र दरवाजा ही रहे तो निश्चय ही उसमें शीलन सड़न और उसमें बीमारी के कीटाणु पलेंगे। इसलिए गावों में मकानों की नई बनावट के नये नकशे भी देर सबेर बनेंगे ही। बिच-बिच गलियाँ और पानी की निकासी का प्रबन्ध न होना ऐसी बुराई है जिससे ग्राम्य जीवन के स्वस्थ वातावरण में भी बीमारियों का प्रवेश शहरों की तुलना में कम नहीं वरन् अधिक ही है। बसावट सम्बन्धी नई योजना का प्रचलन होकर ही रहेगा। ऐसी दशा में इन सब वस्तुओं की व्यवस्था ग्राम्य जीवन के लिए आवश्यक हो जायेगी और उसमें कितने ही लोगों को नया काम मिलेगा। मधु मक्खी पालन जैसे धन्धे तो ऐसे हैं जिन्हें आसानी से आरम्भ किया जा सकता है। यदि साज संभाल ठीक से रखी जाय तो एक छत्ता प्रायः एक रुपया रोज की आमदनी दे सकता है।

खाद्यपदार्थों की मँहगाई बढ़ने से किसान की आर्थिक स्थिति सुधरी है। वह निरर्थक कामों में अपव्यय की तरह खर्च होती रहती है। यदि उस पूँजी का सम्मिलित सहकारी स्तर पर उपयोग हो तो कितने ही नए उद्योग खुल सकते हैं और कितने ही पुराने उद्योगों की आजीविका बढ़ सकती है। आवश्यकता केवल मार्गदर्शन की, उन्हें समझा बुझा कर रास्ते पर लाने की है। यह कार्य बाहर से आने वाले ग्राम सेवक आदि अफसर उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकते जितना कि स्थानीय प्रतिभाशाली लोग। अभी अपने गावों में अनेक प्रकार के सुधार परिवर्तनों की आवश्यकता है। घरों के पानी की नलियों में निकलने या जगह-जगह सूखते रहने की आवश्यकता है। इन सब कार्यों को हाथ में लेने वाली पंचायत कितने

ही आदमियों को नये काम दे सकती है। और उनका खर्च कृषि आदि व्यवसायों पर कर लगाकर वसूल कर सकती है।

अभी कृषि आमदनी पर कोई कर्ज नहीं है। देखने में यह बड़ी रियायत या कृपा मालूम पड़ती है किन्तु यह परिपाटी है हानिकारक। पिछड़ी और बुरी स्थिति में पड़े हुए गाँवों का स्वास्थ्य और सुविधा की दृष्टि से सुधार तो होना ही चाहिए। विशेषतया तब जब कि किसान को उपज का समुचित लाभ मिलने लगा है और वह नए सुधारों की आवश्यकता अनुभव करता है। कोई जमाना था जब पिछड़ेपन की चरम सीमा थी। सामन्त उनकी खुशहाली से चिढ़ते थे और प्रतिरोध करने की आशंका करते थे। पर अब तो वैसी बात नहीं रही। प्रगति का माहौल चारों ओर बन रहा है। एक को देखकर दूसरे का उत्साह जग रहा है। फिर सरकार भी इन कामों के लिए पंचायतों को, सरकारी समितियों को अनुदान या कर्ज दे रही है। इस पैसे का दुरुपयोग तब होता जब बिचौलियों का उसमें हस्तक्षेप होता है। यदि ग्रामवासी पंचायत के सदस्य उसे अपना निजी काम समझें और सब पैसों का सदुपयोग तथा श्रमदान की सहायता करने लगें तो सरकारी अनुदानों से अब की अपेक्षा दूना काम हो सकता है। हरीतिमा का शाक भाजी का, हरे-भरे वृक्षों का, जल्दी फल देने वाले उद्यानों ऐसा माहौल बन सकता है जिसे देखकर किसी का मन उसे छोड़ने का न हो।

छोटे बच्चों की प्राथमिक शालाएँ हर गाँव में होनी चाहिए। इसके लिए मँहगे अध्यापकों की नियुक्ति न बन पड़े तो गाँव के रिटायर शिक्षितों या घरेलू कामों से समय बचा लेने वाले सेवा भावी शिक्षकों की सहायता से ऐसे स्कूल हर गाँव में चल सकते हैं और बेकारी से, गप बाजी से, चुगलखोरी से नष्ट होने वाले समय को बचाकर प्रौढ़ शिक्षा का माहौल बना सकता है। इन सब बातों का प्रबन्ध करने के लिए ऐसी अग्रगामी प्रतिभाओं की आवश्यकता है जो इन कामों का ताना बाना बुनें और पुरुषार्थ को आगे रख कर अन्यान्य सहयोगियों की सहायता से उसे

पूरा कर दिखावें। यदि वे प्रतिभाएँ स्वल्प संतोष की देहाती परम्परा त्याग कर शहरों की चमक दमक की ओर भागने लगें या आरामतलबी की नौकरी ढूँढ़ने लगें तो समझना चाहिए कि गाँव अनाथ ही हो जायेंगे और उनकी प्रगति का कार्य रुक जायेगा।

युगोस्लाविया जैसे देशों का ग्राम्य जीवन ऐसा सरल, सौम्य और सुविधाजनक है कि लोग शहरों को छोड़ कर देहाती जीवन जीने का आनन्द लेने की तैयारी करते हैं। एक हम हैं जिनकी प्रतिभाएँ मात्र अपनी सुविधाएँ सोचती और अपने क्षेत्र को उत्थान में लगाकर अपने लिए अपने जैसे अनेक लोगों के लिए, उस क्षेत्र में उद्योग उपजाने, सुधार के नये साधन खड़े करने की ओर ध्यान नहीं देते।

ग्राम सुधार की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता इस बात की है कि वहाँ से शहरों पर लद पड़ने वाली प्रतिभा पलायन रुके और लोग मात्र अपने ही स्वार्थ साधन की बात सोचते रहने की अपेक्षा समूचे गाँव को अपना निजी परिवार मानें और उस समय का सर्वतोमुखी विकास के उपयोग करने का व्रत ग्रहण करें।

छोटे गाँवों में भी ऐसे खाते पीते परिवार होते हैं जिनका निर्वाह ढर्रा सुविधा पूर्वक चलता रहता है। उस परिवार का एक प्रतिभाशाली सदस्य गाँव का बहुमुखी उत्थान करने के लिए जन सम्पर्क साधने और नई-नई रचनात्मक प्रवृत्तियों को जन्म देने एवम् पोषण करने में लगा रहे तो इतने भर में न केवल वहाँ का वातावरण सुधार सकता है वरन् उत्पादन के अनेक नये स्रोत खुल सकते हैं। कृषि और पशुपालन जो आज-कल पुराने ढर्रे से किए जाने पर एक परिवार का मुश्किल से ही खर्च चल पाता है। पीछे सुधरे हुए तरीके अपनाने पर कई गुना लाभ देने लगते हैं। इस स्थिति को बदल देने का परमार्थ प्रकारान्तर से उतना ही है कि किसी देश के उत्कर्ष एवम् कायाकल्प का।

इस काम में कोई बड़ी कठिनाई नहीं है। सुधार और प्रगति की बातें यदि उन्हें प्यार और गम्भीरता के वातावरण में समझाई जाँय तो वे

न समझ सकें ऐसी कोई बात नहीं है । उपयोगी तरीके अपनाने से इन्कार करें सो बात भी नहीं है । नवीन जानकारियाँ देने और उपयोगी मार्ग-दर्शन के लिए सरकारी ग्रामसेवक भी मिल जाते हैं । या वे जहाँ रहते हैं वहाँ जाकर कई काम की बातें पूछी और स्थानीय, लोगों को बताई समझाई जा सकती हैं । उन्हें कार्यान्वित भी कराया जा सकता है । इस प्रकार प्रगति के अनेकों अवरुद्ध मार्ग नये सिरे से खुल सकते हैं । यातायात मार्गों में से लोग मिट्टी उठाते और उन्हें सँकरे करते रहते हैं । इस प्रकार उन खेत वालों को राई रत्ती भर लाभ हो जाता है पर रास्ते सँकरे हो जाने पर गाँव तक बैलगाड़ियाँ पहुँचने में भारी अड़चन पड़ती है । इस दुर्बुद्धि को रोका जा सके, रास्तों के सहारे पेड़ लगाये जा सकें तो जगह भी न घिरे और उधर निकलने वाले लोगों को राहत भी मिले ।

यह आर्थिक सुविधा एवम् उन्नति की बात हुई । इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक परम्पराओं को पुनर्जीवित करने के लिए भी कितने ही काम करने को पड़े हैं । गाँव का एक सम्मिलित बड़ा हाल हो । उसकी एक दीवार में गायत्री माता की प्रतिमा प्रतिष्ठित हो, सभी उनको दैनिक प्रणाम करने पहुँचे तो एकाकी भजन पूजन की जगह ईसाई गिरजा घरों और मुसलमान मस्जिदों की तरह उनका उपयोग सामूहिकता की प्रवृत्ति बढ़ाने के लिए होता है । अनेक धर्म संस्थान बनाने की उसी में बच्चों की शिक्षा प्रौढ़– शिक्षा– महिला शिक्षा आदि अदल बदल कर हो सकते हैं । सप्ताह के एक दिन जब भी इन विद्यालयों की छुट्टी हो उस दिन प्रज्ञा प्रशिक्षण का क्रम चल सकता है । उसी की दीवार में आलमारियाँ लगाकर पुस्तकालय के लिए भी स्थान निकल सकता है । बीच के हाल के एक ओर स्टोर दूसरी ओर कार्यकर्ता के निवास के लिए, रसोई आदि के लिए जगह निकल सकती है ।

ब्रह्मवर्चस् का गायत्री मंदिर तथा गायत्री नगर का छोटा शक्ति पीठ इसी दृष्टि से नमूने के लिए बनाया गया था कि लोग इन्हें देखकर अनुमान लगायें कि किस स्तर की प्रज्ञा पीठ बनानी है । किन्तु हुआ

उल्टा । शिखर वाले मन्दिर बनने लगे जिसमें पैसा तो उतना ही लग गया पर पुरातन मन्दिरों का ढर्रा ही उनमें कार्यान्वित किया गया है । उनकी स्थिति ऐसी है जिनमें किसी शिक्षा संस्था का कार्यक्रम नहीं चलाया जा सकता । यह समग्र योजना ध्यान में रहती तो इतनी जगह निकाली गई होती जिसमें जगह तो कुछ अधिक लगती पर व्यायामशाला, पाठशाला इर्द-गिर्द हरीतिमा लगने से एक बहुत सुन्दर उपयोगी सार्वजनिक स्थान बन जाता । मात्र २४०० ऐसे धर्म स्थान बने हैं जिनमें से प्रायः आधे तो ऐसे भी हैं जिनमें एक ही स्थान में अनेकों काम लिये जा सकें ।

भारत में सात लाख गाँव हैं । हमें हर गाँव पीछे एक ऐसा सार्वजनिक भवन बनाना है ताकि समूचे देश के हर गाँव में सत्प्रवृत्तियों का सुसंचालन चल पड़े । अब आगे भी नये देवालय बनेंगे । इनके बनने के लिए मृतक भोज की राशि बचाकर उस प्रयोजन के लिए लगाई जाने लगे । तीर्थयात्रा की मटरगश्ती वाला धन बचाकर इन कामों में लगने लगे तो जिस प्रकार पिछले दिनों २४०० प्रज्ञापीठ बने उससे भी अधिक संख्या में नये स्तर के अपने प्रज्ञा परिजनों द्वारा ही बनाकर खड़े किये जा सकते हैं और दान के नाम पर अपव्यय होने वाली धनराशि का इसी निर्माण के निमित्त एवम् उससे सम्बन्धित गतिविधियों को कार्यान्वित करने में लगाया जा सकता है । दान पुण्य की परिपाटी को यदि शिक्षा सम्वर्धन और भावना विस्तार के लिए मोड़ा जाने लगे तो समझना चाहिए कि समूची धर्मधारणा का उपयोग प्रतिगामिता के हाँथों से छिन कर प्रगतिशीलता के हाथों चला गया । इस दृष्टि से ईसाई मिशनों की कार्य पद्धति को हमें ध्यानपूर्वक देखना चाहिए । कोई पादरी अपने निजी प्रयोजन के लिए कभी कोई धन स्वीकार नहीं करता । कुछ कभी मिलता है तो उसे संस्था को दिया जाता है और संस्था अपने नियंत्रण में उन कार्यकर्ताओं से कठोर श्रम लेती है । साथ ही उनके निर्वाह का प्रबंध भी करती है । हमारे मस्तिष्क भी उस आदर्शवादिता, उपयोगिता; और सफलता को ध्यान में रखते हुए अपने यहाँ की धर्मधारणा में इसी प्रकार

सुधार परिवर्तन करना चाहिए। ऐसा सम्भव हो सका तो आज के सन्त बाबाओं में से ही हर गाँव के पीछे साढ़े आठ कार्यकर्ता सेवा साधना के निमित्त मिल सकते हैं। यदि वे मुड़ें तो हमें उसी आधार पर नये लोक सेवी खड़े करने चाहिए और उनका निर्वाह व्यय वहन करते हुए अपने देश का प्रगतिशील काया कल्प करना चाहिए। ईसाई संस्थाओं का जिक्र चल पड़ा तो यहाँ तक बात और ध्यान रखने की है कि दीन दुःखियों की सेवा सहायता करने से अनायास ही जनता की श्रद्धा और सहानुभूति उमड़ती है। हर चर्च पीछे एक डिस्पेन्सरी जुड़ी होती है। उसमें अच्छे डाक्टर और अच्छी दवाइयाँ रहती हैं पर अपने यहाँ यह हो सकता है कि जड़ी-बूटियों की कुछ क्यारियाँ लगा ली जाय या आस पास से ही उन्हें खोद लिया जाय। किसी शिक्षित वैद्य से इनका उपयोग सीख लिया जाय। शान्ति कुञ्ज में भी जड़ी-बूटियों की एक किताब छपी है। इन सबके आधार पर हम बीमार घरों में जा कर उन्हें परिचर्या का उपचार बता सके और बिना हानि पहुँचाने वाली जड़ी-बूटियों का उपचार सिखा सके तो उतने भर से भी एक ऐसा प्रचलन चल सकता है कि उससे विशेष समय या धन भी खर्च कम हो और उतने भर से जनसाधारण की सहानुभूति अपनी संस्था के लिए अर्जित होती रहे। यह उद्यान मात्र श्रमदान से खड़ा हो सकता है। इतनी जरा सी जमीन किसी भी भले आदमी की मात्र श्रद्धा को उभारकर सहज ही उपलब्ध किया जा सकता है।

परमार्थ परायणता, हृदय की विशालता, सूझ बूझ और श्रमशीलता का समन्वय अपने स्वभाव में सम्मिलित रखने वाले व्यक्तियों की अपने देश में इन दिनों अत्यधिक आवश्यकता है। उनकी पूर्ति हो सके तो समझना चाहिए कि ईश्वर का वरदान प्रत्यक्ष रूप में आकाश से अपने ऊपर बरस पड़ा।

मुद्रक—युगान्तर चेतना प्रेस, शान्ति कुञ्ज, हरिद्वार।

प्रज्ञा विद्यालयों की अनिवार्य

पाठ्य प्रशिक्षण सामग्री

पाठ्य पुस्तकों के नाम:— (१) इस वर्ष का एक अति महत्वपूर्ण कदम। (२) त्रैमासिक प्रज्ञा प्रशिक्षण योजना। (३) अशिक्षा का निवारण एवम् युग शिल्पियों का नवसृजन। (४) नारी शिक्षा की उपेक्षा न हो। (५) स्वस्थ रहने के मूल-भूत सिद्धान्त। (६) संक्षिप्त गायत्री यज्ञ विधान। (७) समझ-दारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी। (८) तुच्छ से तुच्छ और महान से महान। (९) आत्मिक प्रगति हेतु प्रज्ञायोग की साधना। (१०) जन जागरण के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। (११) प्रज्ञा गीत—१ (१२) प्रज्ञा गीत-२ (१३) बाल संस्कार शालायें इस तरह चलें। (१४) गायत्री उपासना और उसके चमत्कारी सत्परिणाम। (१५) इस युग की अभूतपूर्व स्थापना प्रज्ञा अभियान। (१६) कैसा होगा आने वाला प्रज्ञा युग? (१७) धर्मतंत्र की क्षमता निरर्थक न बहे। (१८) सामूहिक आयोजनों की व्यवस्था। (१९) पांच क्रान्तियाँ जो अविलम्ब हो। (२०) आलोक वितरण की विशाल योजना। (२१) समस्यायें अनेक, हल एक। (२२) नारी को मनुष्य समझा जाय। (२३) जीवन एक अमूल्य सम्पदा। (२४) विवाह और दाम्पत्य जीवन का निर्वाह। (२५) परिवार में स्वर्गीय वातावरण कैसे बने? (२६) इन भ्रम जंजालों से निकलें। (२७) सहकारिता अर्थात् समृद्धि और प्रगति। (२८) हमारे देहातों का कायाकल्प कैसे हो? (२९) ऋण लाद कर न मरें। (३०) बुढ़ापे को कष्ट साध्य न बनायें।